Chapter इक्यावन

मुचुकुन्द का उद्धार

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह कृष्ण ने मुचुकुन्द की वक्र दृष्टि द्वारा कालयवन का वध कराया और कृष्ण तथा मुचुकुन्द के बीच क्या वार्ता हुई।

अपने परिवारजनों को द्वारका के दुर्ग में सुरक्षित करके श्रीकृष्ण मथुरा से बाहर चले गये। वे उदीयमान चन्द्रमा की तरह लग रहे थे। कालयवन ने देखा कि कृष्ण का तेजस्वी शरीर नारद द्वारा किये गये वर्णन से मेल खा रहा था अतएव वह यवन जान गया कि वे भगवान् ही हैं। यह देखकर कि वे कोई हथियार धारण नहीं किये हैं, उसने भी अपने हथियार रख दिये और उनसे युद्ध करने के उद्देश्य से पीछे की ओर से उनकी तरफ भागा। श्रीकृष्ण यवन से दूर भागते रहे और हर कदम पर केवल इतनी दूर रहते रहे जिससे उसकी पकड़ में न आ सकें और इस तरह वे उसे काफी दूर एक पर्वतगुफा तक ले गये। कालयवन दौड़ता जाता और कृष्ण को अपमानजनक शब्द भी कहता जाता किन्तु वह उन्हें पकड़ नहीं पाया क्योंकि उसके दुष्कर्म का कोष अभी पूरी तरह खाली नहीं हुआ था। श्रीकृष्ण उस गुफा में घुस गये और कालयवन भी उनका पीछा करते पहुँचा जहाँ उसने एक व्यक्ति को जमीन पर लेटे देखा। उसे कृष्ण जानकर कालयवन ने उस पर पाद-प्रहार किया। वह व्यक्ति दीर्घकाल से सो रहा था अत: तीव्रता से जगा दिये जाने से उसने क्रुद्ध होकर चारों ओर देखा तो कालयवन दिख गया। उसने उसकी ओर क्रूरता से घूरा तो कालयवन का शरीर क्षण-भर में जलकर राख हो गया।

यह असाधारण व्यक्ति मान्धाता का पुत्र मुचुकुन्द था। वह ब्राह्मण संस्कृति का उपासक था और अपने व्रत का पक्का था। इसके पूर्व उसने असुरों से देवताओं की रक्षा करने में, सहायता देने में वर्षों बिताए थे। जब देवताओं को रक्षक के रूप में कार्तिकेय प्राप्त हो गये तो उन्होंने मुचुकुन्द को अवकाश दे दिया और कहा कि वह मोक्ष के अतिरिक्त कोई भी और वर माँग ले क्योंकि मोक्ष देना तो विष्णु के हाथों में है। अत: मुचुकुन्द ने देवताओं से सोते रहने का वर माँग लिया और इसीलिए वह तभी से इस गुफा में पड़ा सो रहा था।

कालयवन के भस्म हो जाने पर श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द को दर्शन दिया। वह कृष्ण की अद्वितीय सुन्दरता देखकर आश्चर्यचकित हो उठा। उसने भगवान् कृष्ण से पूछा कि आप कौन हैं और उनसे अपना परिचय इस तरह दिया, ''मैं दीर्घकाल तक जागते रहने के बाद जब थक गया तो इस गुफा में निद्रा का आनन्द ले रहा था, तभी किसी अजनबी ने मुझे छेड़ा और अपने पाप-कर्म के फलस्वरूप वह जलकर राख हो गया। हे प्रभु, हे शत्रु-हन्ता! यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आपके सुन्दर स्वरूप का दर्शन कर रहा हूँ।''

तब श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द को बताया कि वे कौन हैं और उसे वर दिया। मुचुकुन्द बुद्धिमान था इसलिए भौतिक जीवन की व्यर्थता को सोचते हुए उसने श्रीकृष्ण के चरणकमलों में शरण ग्रहण करने का अनुरोध किया।

इस अनुरोध से प्रसन्न होकर भगवान् ने मुचुकुन्द से कहा, ''भक्तगण भौतिक वरों से कभी भी मोहित नहीं होते, केवल अभक्तगण—यथा योगी तथा ज्ञानी भौतिक वरों में रुचि रखते हैं, क्योंकि उनके हृदय में भौतिक इच्छाएँ होती हैं। हे मुचुकुन्द! तुम्हें मेरी शाश्वत भक्ति प्राप्त होगी। अब मेरे शरणागत रहकर उन पापों के फलों को दूर करने के लिए तपस्या करो, जिन्हें तुमने योद्धा के रूप में अन्यों का वध करते हुए किये हैं। अगले जन्म में तुम उत्तम ब्राह्मण बनोगे और मुझे प्राप्त करोगे।'' इस तरह भगवान् ने मुचुकुन्द को अपना आशीष प्रदान किया।

श्रीशुक उवाच

तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ।
दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥ २ ॥
नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ।
मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥
वासुदेवो ह्ययमिति पुमान्श्रीवत्सलाञ्छनः ।
चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥ ४ ॥
लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ।
निरायुधश्चलन्पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥ ५ ॥
इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् ।

अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तम्—उसको; विलोक्य विनिष्क्रान्तम्—बाहर आते; उज्जिहानम्—उठते हुए; इव—मानो; उडुपम्—चन्द्रमा को; दर्शनीय-तमम्—देखने में सर्वाधिक सुन्दर; श्यामम्—गहरे नीले; पीत—पीला; कौशेय—रेशम; वाससम्—वस्त्र; श्रीवत्स—लक्ष्मी का चिह्न, जो भगवान् के बालों के गुच्छे का होता है; वक्षसम्—वक्षस्थल पर; भ्राजत्—चमकीला; कौस्तुभ—कौस्तुभ मणि से युक्त; आमुक्त—अलंकृत; कन्धरम्—कन्धा; पृथु—विशाल; दीर्घ—तथा लम्बा; चतुः—चार; बाहुम्—भुजाओं वाला; नव—नये खिले; कञ्ज—कमलों की तरह; अरुण—गुलाबी; ईक्षणम्—आँखें; नित्य—सदैव; प्रमुदितम्—प्रसन्न; श्रीमत्—ऐश्वर्यवान; सु—सुन्दर; कपोलम्—गालों वाला; शुचि—स्वच्छ; स्मितम्—मन्द-हास युक्त; मुख—उनका मुँह (मुखमण्डल); अरविन्दम्—कमल सदृश; बिभ्राणम्—प्रदर्शित करते; स्फुरन्—चमकते हुए; मकर—मछली की आकृति के; कुण्डलम्—कान की बालियाँ; वासुदेवः—वासुदेव; हि—निस्सन्देह; अयम्—यह; इति—इस प्रकार सोचते हुए; पुमान्—पुरुष; श्रीवत्स-लाञ्छनः—श्रीवत्स से अंकित; चतुः-भुजः—चार भुजाओं वाले; अरविन्द-अक्षः—कमल जैसे नेत्रों वाले; वन—जंगल के फूलों की; माली—माला पहने; अति—अत्यधिक; सुन्दरः—सुन्दर; लक्षणैः—लक्षणों से; नारद-प्रोक्तैः—नारदमुनि द्वारा बतलाये गये; न—नहीं; अन्यः—दूसरा; भवितुम् अर्हति—हो सकता है; निरायुधः—बिना हथियार के; चलन्—जाते हुए; पद्भ्याम्—पैदल; योत्स्ये—लड़ूँगा; अनेन—इससे; निरायुधः—बिना हथियार के; इति—इस प्रकार; निश्चित्य—निश्चय करके; यवनः—म्लेच्छ कालयवन; प्राद्रवन्तम्—भागता हुआ; पराक्—मुड़ा; मुखम्—मुँह; अन्वधावत्—पीछा करने लगा; जिघृक्षुः—पकड़ने की इच्छा से; तम्—उसको; दुरापम्—दुष्प्राप्य; अपि—भी; योगिनाम्—योगियों द्वारा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कालयवन ने भगवान् को मथुरा से उदित होते चन्द्रमा की भाँति आते देखा। देखने में भगवान् अतीव सुन्दर थे, उनका वर्ण श्याम था और वे रेशमी पीताम्बर धारण किये थे। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह था और उनके गले में कौस्तुभमणि सुशोभित थी। उनकी चारों भुजाएँ बलिष्ठ तथा लम्बी थीं। उनका मुख कमल सदृश सदैव प्रसन्न रहने वाला था, आँखें गुलाबी कमलों जैसी थीं, उनके गाल सुन्दर तेजवान थे, हँसी स्वच्छ थी तथा उनके कान की चमकीली बालियाँ मछली की आकृति की थीं। उस म्लेच्छ ने सोचा, ''यह व्यक्ति अवश्य ही वासुदेव होगा क्योंकि इसमें वे ही लक्षण दिख रहे हैं, जिनका उल्लेख नारद ने किया था—उसके श्रीवत्स का चिन्ह है, चार भुजाएँ हैं, आँखें कमल जैसी हैं और वह वनफूलों की माला पहने है और अत्यधिक सुन्दर है। वह और कोई नहीं हो सकता। चूँकि वह पैदल चल रहा है और कोई हथियार नहीं लिए है, अतएव मैं भी बिना हथियार के उससे युद्ध करूँगा।'' यह मन में ठान कर वह भगवान् के पीछे पीछे दौड़ने लगा और भगवान् उसकी ओर पीठ करके भागते गये। कालयवन को आशा थी कि वह कृष्ण को पकड़ लेगा यद्यपि बड़े बड़े योगी भी उन्हें प्राप्त नहीं कर पाते।

तात्पर्य : यद्यपि कालयवन भगवान् कृष्ण को अपनी आँखों से देख रहा था किन्तु वह सुन्दर भगवान् का ठीक से मूल्यांकन नहीं कर पा रहा था। अतः उसने कृष्ण की पूजा करने की बजाय उन

पर आक्रमण कर दिया। इसी तरह आधुनिक व्यक्तियों के लिए दर्शन, शान्ति व्यवस्था और धर्म तक के नाम पर कृष्ण पर आक्रमण करना असामान्य बात नहीं है।

हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरीणा स पदे पदे ।
नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

हस्त—अपने हाथ में; प्राप्तम्—प्राप्त हुआ; इव—मानो; आत्मानम्—अपने को; हरिणा—भगवान् कृष्ण द्वारा; सः—वह; पदे पदे—हर डग पर; नीतः—लाया गया; दर्शयता—दिखाये जाने वाले के द्वारा; दूरम्—दूर; यवन-ईशः—यवनों का राजा; अद्रि—पर्वत की; कन्दरम्—गुफा में।

प्रति क्षण कालयवन के हाथों की पहुँच में प्रतीत होते हुए भगवान् हरि उस यवनराज को दूर एक पर्वत—कन्दरा तक ले गये।

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ।
इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥ ८॥

शब्दार्थ

पलायनम्—भागना; यदु-कुले—यदुवंश में; जातस्य—जन्म लेने वाले; तव—तुम्हारा; न—नहीं है; उचितम्—ठीक; इति—इन शब्दों में; क्षिपन्—अपमान करता हुआ; अनुगतः—पीछा करता; न—नहीं; एनम्—उसको; प्राप—पहुँच पाया; अहत—दूर हुआ; अशुभः—जिसके पापमय कर्म-फल।

भगवान् का पीछा करते हुए वह यवन उन पर यह कह कर अपमान कर रहा था, ''तुमने यदुवंश में जन्म ले रखा है, तुम्हारे लिए इस तरह भागना उचित नहीं है!'' तो भी कालयवन भगवान् कृष्ण के पास तक नहीं पहुँच पाया क्योंकि उसके पाप कर्म-फल अभी धुले नहीं थे।

एवं क्षिप्तोऽपि भगवान्प्राविशद्गिरिकन्दरम् ।
सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; क्षिप्तः—अपमानित; अपि—भी; भगवान्—भगवान्; प्राविशत्—घुस गये; गिरि-कन्दरम्—पर्वत की गुफा में; सः—वह, कालयवन; अपि—भी; प्रविष्टः—घुसते हुए; तत्र—वहाँ; अन्यम्—दूसरे; शयानम्—लेटे हुए; ददृशे—देखा; नरम्—मनुष्य को।

यद्यपि भगवान् इस तरह से अपमानित हो रहे थे किन्तु वे पर्वत की गुफा में घुस गये। उनके पीछे पीछे कालयवन भी घुसा और उसने वहाँ एक अन्य पुरुष को सोये हुए देखा।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् अपना वैराग्य वैभव दिखलाते हैं। अपनी योजना पूरी करने तथा मुचुकुन्द को आशीर्वाद देने के लिए वे दृढ़संकल्प थे, अतः वे कालयवन के अपमान की उपेक्षा करते

हुए शान्त भाव से अपने कार्यक्रम में आगे बढ़ते रहे।

नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ।
इति मत्वाच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

ननु—ऐसा लगता है; असौ—वह; दूरम्—काफी दूरी तक; आनीय—लाकर; शेते—लेटा हुआ है; माम्—मुझको; इह—यहाँ; साधु-वत्—सन्त-पुरुष की तरह; इति—ऐसा; मत्वा—(मुझको) सोचकर; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण होने का; मूढः—ठगा गया; तम्—उसको; पदा—अपने पाँव से; समताडयत्—पूरे बल से प्रहार किया।

''यह तो मुझे इतनी दूर लाकर अब किसी साधु-पुरुष की तरह यहाँ लेट गया है।'' इस तरह सोते हुए उस व्यक्ति को भगवान् कृष्ण समझ कर, उस ठगे हुए मूर्ख ने पूरे बल से उस पर पाद-प्रहार किया।

स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ।
दिशो विलोकयन्पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; उत्थाय—जग कर; चिरम्—दीर्घकाल से; सुप्तः—सोया हुआ; शनैः—धीरे से; उन्मील्य—खोलते हुए; लोचने—अपनी आँखें; दिशः—सारी दिशाओं में; विलोकयन्—देखते हुए; पार्श्वे—अपनी बगल में; तम्—उसको, कालयवन को; अद्राक्षीत्—देखा; अवस्थितम्—खड़ा।

वह पुरुष दीर्घकाल तक सोने के बाद जागा था और धीरे धीरे उसने अपनी आँखें खोलीं। चारों ओर देखने पर उसे अपने पास ही कालयवन खड़ा हुआ दिखाई दिया।

स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ।
देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, कालयवन; तावत्—तब तक; तस्य—उस जगे हुए पुरुष का; रुष्टस्य—क्रुद्ध; दृष्टि—दृष्टि को; पातेन—डालने से; भारत—हे भरतवंशी (परीक्षित महाराज); देह-जेन—अपने शरीर से ही उत्पन्न; अग्निना—अग्नि से; दग्धः—जल कर; भस्म-सात्—राख; अभवत्—हो गया; क्षणात्—क्षण-भर में।

वह जगाया हुआ पुरुष अत्यन्त क्रुद्ध था। उसने अपनी दृष्टि कालयवन पर डाली तो उसके शरीर से लपटें निकलने लगीं। हे राजा परीक्षित, कालयवन क्षण-भर में जल कर राख हो गया।

तात्पर्य : जिस व्यक्ति ने कालयवन को अपनी दृष्टि से भस्म कर दिया वह मुचुकुन्द था। जैसाकि वह भगवान् को बतलायेगा, उसने दीर्घकाल तक देवताओं की ओर से युद्ध किया था और अन्त में बिना छेड़छाड़ के सोते रहने का वर प्राप्त किया था। *हरिवंश* में बतलाया गया है कि उसे एक वर यह

भी मिला था कि जो उसकी नींद से उसे उठायेगा उसे वह विनष्ट कर सकेगा। आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *हरिवंश* से निम्नलिखित उद्धरण दिये हैं—

प्रसुप्तं बोधयेद् यो मां तं दहेयमहं सुराः।

चक्षुषा क्रोधदीप्तेन एवमाह पुनः पुनः॥

''मुचुकुन्द ने बारम्बार कहा, ''हे देवताओ! मैं अपनी क्रोध से जलती हुई आँखों से उसको भस्म कर सकूँ जो मुझे नींद से उठाये।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि मुचुकुन्द ने यह दूषित अनुरोध इन्द्र को भयभीत बनाने के लिए किया था क्योंकि मुचुकुन्द ने सोचा कि अन्यथा वह उसे अपने ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी शत्रुओं से लड़ने के लिए बारम्बार जगा कर अनुरोध कर सकता है। मुचुकुन्द के अनुरोध पर इन्द्र की सहमति का वर्णन *श्री विष्णु पुराण* में इस प्रकार वर्णित है—

प्रोक्तश्च देवै संसुप्तं यस्त्वामुत्थापयिष्यति।

देहजेनाग्निना सद्यः स तु भस्मीकरिष्यति॥

''देवताओं ने घोषणा की, ''जो भी तुम्हें नींद से जगायेगा वह अपने ही शरीर से उत्पन्न अग्नि से सहसा जल कर भस्म हो जायेगा।''

श्रीराजोवाच

को नाम स पुमान्ब्रह्मन्कस्य किंवीर्य एव च ।
कस्माद्गुहां गतः शिष्ये किंतेजो यवनार्दनः ॥ १३॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (परीक्षित) ने कहा; कः—कौन; नाम—विशेष रूप से; सः—वह; पुमान्—पुरुष; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण (शुकदेव); कस्य—किस (वंश) का; किम्—क्या; वीर्यः—शक्ति; एव च—और भी; कस्मात्—क्यों; गुहाम्—गुफा में; गतः—जाकर के; शिष्ये—सोने के लिए लेट गया; किम्—किसका; तेजः—वीर्य (सन्तान); यवन—यवन का; अर्दनः—संहार करने वाला।

राजा परीक्षित ने कहा : हे ब्राह्मण, वह पुरुष कौन था? वह किस वंश का था और उसकी शक्तियाँ क्या थीं? म्लेच्छ का संहार करने वाला वह व्यक्ति गुफा में क्यों सोया हुआ था और वह किसका पुत्र था?

श्रीशुक उवाच

स इक्ष्वाकुकुले जातो मान्धातृतनयो महान् ।
मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सः—वह; इक्ष्वाकु-कुले—इक्ष्वाकु वंश में (सूर्य देवता विवस्वान का नाती); जातः—उत्पन्न; मान्धातृ-तनयः—राजा मान्धाता का पुत्र; महान्—महापुरुष; मुचुकुन्दः इति ख्यातः—मुचुकुन्द नाम से विख्यात; ब्रह्मण्यः—ब्राह्मणों का भक्त; सत्य—अपने व्रत का सच्चा; सङ्गरः—युद्ध में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : उस महापुरुष का नाम मुचुकुन्द था और वह इक्ष्वाकु वंश में मान्धाता के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ था। वह ब्राह्मण संस्कृति का उपासक था और युद्ध में अपने व्रत का पक्का था।

स याचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे ।
असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

सः—वह; याचितः—याचना करने पर; सुर-गणैः—देवताओं द्वारा; इन्द्र-आद्यैः—इन्द्र इत्यादि द्वारा; आत्म—अपनी; रक्षणे—रक्षा के लिए; असुरेभ्यः—असुरों से; परित्रस्तैः—भयभीत; तत्—उनकी; रक्षाम्—रक्षा; सः—उसने; अकरोत्—की; चिरम्—दीर्घकाल तक।

जब इन्द्र तथा अन्य देवताओं को असुरों द्वारा त्रास दिये जा रहे थे तो उनके द्वारा अपनी रक्षा के लिए सहायता की याचना किये जाने पर मुचुकुन्द ने दीर्घकाल तक उनकी रक्षा की।

लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् ।
राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नः परिपालनात् ॥ १६॥

शब्दार्थ

लब्ध्वा—प्राप्त करके; गुहम्—कार्तिकेय को; ते—वे; स्वः—स्वर्ग का; पालम्—रक्षक के रूप में; मुचुकुन्दम्—मुचुकुन्द को; अथ—तब; अब्रुवन्—कहा; राजन्—हे राजन्; विरमताम्—कृपया दूर रहें; कृच्छ्रात्—कष्टकर; भवान्—आप; नः—हमारे; परिपालनात्—रक्षा करने से।

जब देवताओं को अपने सेनापति के रूप में कार्तिकेय प्राप्त हो गये तो उन्होंने मुचुकुन्द से कहा, ''हे राजन्, अब आप हमारी रक्षा का कष्टप्रद कार्य छोड़ सकते हैं।''

नरलोकं परित्यज्य राज्यं निहतकण्टकम् ।
अस्मान्पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥ १७॥

शब्दार्थ

नर-लोकम्—मनुष्यों के लोक में; परित्यज्य—छोड़कर; राज्यम्—राज्य; निहत—दूर हुए; कण्टकम्—काँटे; अस्मान्—हमको; पालयतः—पालने वाले; वीर—हे वीर; कामः—इच्छाएँ; ते—तुम्हारी; सर्वे—सभी; उज्झिताः—उखाड़कर फेंक दी गईं।

''हे वीर पुरुष, नर-लोक में अपने निष्कण्टक राज्य को छोड़कर आपने हमारी रक्षा करते

हुए अपनी निजी आकांक्षाओं की परवाह नहीं की।''

सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिनः ।
प्रजाश्च तुल्यकालीना नाधुना सन्ति कालिताः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सुताः—सन्तानें; महिष्यः—पटरानियाँ; भवतः—आपके; ज्ञातयः—अन्य सम्बन्धी; अमात्य—मंत्री; मन्त्रिणः—तथा सलाहकार; प्रजाः—प्रजा; च—तथा; तुल्य-कालीनाः—समकालीन; न—नहीं; अधुना—अब; सन्ति—जीवित हैं; कालिताः—काल से प्रेरित।

''बच्चे, रानियाँ, सम्बन्धी, मंत्री, सलाहकार तथा आपकी समकालीन प्रजा—इनमें से कोई अब जीवित नहीं रहे। वे सभी काल के द्वारा बहा ले जाये गये हैं।''

कालो बलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ।
प्रजाः कालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

कालः—काल, समय; बलीयान्—अत्यन्त बलवान; बलिनाम्—बलवानों की अपेक्षा; भगवान् ईश्वरः—परमेश्वर; अव्ययः—अव्यय, अविनाशी; प्रजाः—मर्त्य प्राणी; कालयते—हाँकता है; क्रीडन्—खेल खेल में; पशु-पालः—पशु-पालक; यथा—जिस तरह; पशून्—पालतू जानवरों को।

''अनंत काल समस्त बलवानों से भी बलवान है और वही साक्षात् परमेश्वर है। जिस तरह पशु-पालक (ग्वाला) अपने पशुओं को हाँकता रहता है उसी तरह परमेश्वर मर्त्य प्राणियों को अपनी लीला के रूप में हाँकते रहते हैं।''

तात्पर्य : यह ब्रह्माण्ड उन दूषित आत्माओं को क्रमशः सुधारने के लिए रचा गया है, जो भौतिक प्रकृति का शोषण करने का प्रयास करते हैं। भगवान् इन बद्धजीवों को उनके कर्म के अनुसार आध्यात्मिक परिष्कार की विविध अवस्थाओं में से घुमाते रहते हैं। इस तरह भगवान् उस ग्वाले (पशुपाल) के समान हैं, जो चरागाह तथा पानी की तलाश में पशुओं को बचाये रखने और पालने के लिए अपने संरक्षण में इधर उधर घुमाता रहता है। एक अन्य दृष्टान्त डॉक्टर का है, जो अपने रोगी को विविध परीक्षणों के लिए अस्पताल के विभिन्न भागों में भेजता रहता है। इसी तरह भगवान् हमें क्रमिक परिष्कार की विधि द्वारा भवजाल में से निकाल देते हैं जिससे हम उनके प्रबुद्ध-संगी के रूप में आनन्द तथा ज्ञान का शाश्वत जीवन बिता सकें। इस तरह मुचुकुन्द के सारे सम्बन्धी, मित्र तथा सहकर्मी काल के प्रभाव से बहुत पहले मिट चुके थे, क्योंकि काल साक्षात् कृष्ण हैं।

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ।
एक एवेश्वरस्तस्य भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

वरम्—वर; वृणीष्व—चुनो; भद्रम्—कल्याण हो; ते—तुम्हारा; ऋते—सिवाय; कैवल्यम्—मोक्ष के; अद्य—आज; नः—हमसे; एकः—एक; एव—एकमात्र; ईश्वरः—सक्षम; तस्य—उसका; भगवान्—भगवान्; विष्णुः—श्री विष्णु; अव्ययः—अविनाशी।

''आपका कल्याण हो, अब आप मोक्ष के सिवाय कोई भी वर चुन सकते हैं क्योंकि मोक्ष को तो एकमात्र अविनाशी भगवान् विष्णु ही प्रदान कर सकते हैं।''

एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः ।
अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; उक्तः—कहकर; सः—वह; वै—निस्सन्देह; देवान्—देवताओं को; अभिवन्द्य—नमस्कार करके; महा—महान्; यशाः—जिसकी ख्याति; अशयिष्ट—लेट गया; गुहा-विष्टः—गुफा में घुसकर; निद्रया—नींद में; देव—देवताओं द्वारा; दत्तया—दी गई।

ऐसा कहे जाने पर राजा मुचुकुन्द ने देवताओं से ससम्मान विदा ली और एक गुफा में गया जहाँ वे देवताओं द्वारा दी गई नींद का आनन्द लेने के लिए लेट गया।

तात्पर्य : श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने निम्नलिखित प्रक्षिप्त पाठ दिया है जिन्हें उपर्युक्त श्लोक की दो पंक्तियों के बीच में होना चाहिए—

निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्षितः ॥

यः कश्चिन् मम निद्राया भंगं कुर्याद् सुरोत्तमाः ।

स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा ॥

स्वापं यातं यो मध्ये तु बोधयेत्त्वामचेतनः ।

स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात् ॥

''तब परिश्रम से थके राजा ने निद्रा को ही वर के रूप में चुन लिया। उन्होंने कहा, ''हे देवताओं में श्रेष्ठ! जो भी मेरी नींद में बाधा डाले वह तुरन्त जल कर राख हो जाये।'' देवताओं ने उत्तर दिया—''ऐसा ही हो'' और उनसे कहा, ''जो अविवेकी व्यक्ति आपको बीच में जगायेगा वह आपके देखने मात्र से तुरन्त जल कर राख हो जायेगा।''

यवने भस्मसान्नीते भगवान्सात्वतर्षभः ।
आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यवने—जब यवन; भस्म-सात्—राख में; नीते—बदल गया; भगवान्—भगवान्; सात्वत—सात्वत वंशजाति का; ऋषभः—सबसे बड़ा वीर; आत्मानम्—स्वयं; दर्शयाम् आस—प्रकट किया; मुचुकुन्दाय—मुचुकुन्द के पास; धी-मते—बुद्धिमान।

जब यवन जल कर राख हो गया तो सात्वतों के प्रमुख भगवान् ने उस बुद्धिमान मुचुकुन्द के समक्ष अपने को प्रकट किया।

तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥ २३ ॥
चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया ।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ २४ ॥
प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ।
अपीव्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥ २५ ॥
पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ।
शङ्कितः शनकै राजा दुर्धर्षमिव तेजसा ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; आलोक्य—देखकर; घन—बादल की तरह; श्यामम्—गहरे नीले रंग के; पीत—पीला; कौशेय—रेशमी; वाससम्—वस्त्र; श्रीवत्स—श्रीवत्स चिह्न; वक्षसम्—वक्षस्थल पर; भ्राजत्—चमकीला; कौस्तुभेन—कौस्तुभ मणि से; विराजितम्—चमकता हुआ; चतुः-भुजम्—चार भुजाओं वाला; रोचमानम्—सुन्दर लगने वाला; वैजयन्त्या—वैजयन्ती नामक; च—तथा; मालया—फूल की माला से; चारु—आकर्षक; प्रसन्न—तथा शान्त; वदनम्—मुख; स्फुरत्—चमचमाती; मकर—मछली के आकार की; कुण्डलम्—कान की बालियाँ; प्रेक्षणीयम्—आँखों को आकृष्ट करने वाली; नृ-लोकस्य—मनुष्यों की; स—सहित; अनुराग—स्नेह; स्मित—मन्द हँसते हुए; ईक्षणम्—नेत्र या चितवन; अपीव्य—सुन्दर; वयसम्—जिसका तरुण स्वरूप; मत्त—क्रुद्ध; मृग-इन्द्र—सिंह की तरह; उदार—भद्र; विक्रमम्—चाल; पर्य-पृच्छत्—प्रश्न किया; महा-बुद्धिः—बुद्धिमान; तेजसा—तेज से; तस्य—उसका; धर्षितः—अभिभूत; शङ्कितः—शंकालु; शनकैः—धीरे धीरे; राजा—राजा ने; दुर्धर्षम्—अजेय; इव—निस्सन्देह; तेजसा—तेज से।

जब राजा मुचुकुन्द ने भगवान् की ओर निहारा तो देखा कि वे बादल के समान गहरे नीले रंग के थे, उनकी चार भुजाएँ थीं और वे रेशमी पीताम्बर पहने थे। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह था और गले में चमचमाती कौस्तुभ मणि थी। वैजयन्ती माला से सज्जित भगवान् ने उसे अपना मनोहर शान्त मुख दिखलाया जो मछली की आकृति के कुण्डलों तथा स्नेहपूर्ण मन्द-हास से युक्त चितवन से सारे मनुष्यों की आँखों को आकृष्ट कर लेता है। उनके तरुण स्वरूप का सौन्दर्य अद्वितीय था और वे क्रुद्ध सिंह की भव्य चाल से चल रहे थे। अत्यन्त बुद्धिमान राजा भगवान् के तेज से अभिभूत हो गया। यह तेज उसे दुर्धर्ष जान पड़ा। अपनी

अनिश्चयता व्यक्त करते हुए मुचुकुन्द ने झिझकते हुए भगवान् कृष्ण से इस प्रकार पूछा।

तात्पर्य : यह महत्त्व की बात है कि श्लोक २४ में भगवान् को *चतुर्भुजं रोचमानम्* कहा गया है। ''भगवान् को अपने सुन्दर चतुर्भुज रूप में देखा गया'' इस महान् ग्रंथ-भर में भगवान् कृष्ण अपने विविध दिव्य रूपों को प्रकट करते दिखते हैं जिनमें से कृष्ण का द्विभुज रूप और नारायण या विष्णु का चतुर्भुज रूप मुख्य हैं। इस तरह इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि कृष्ण तथा विष्णु अभिन्न हैं या कि कृष्ण ही भगवान् के आदि-रूप हैं। कभी कभी ये बातें ठीक से समझ में नहीं आतीं किन्तु महान् आचार्यों ने जो कि आध्यात्मिक विज्ञान में पटु हैं, हमारे लिए यह विषय स्पष्ट कर दिया है। ईश्वर अपने आदि-रूप में न केवल स्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं या कि बद्धजीवों को दण्ड देने वाले हैं अपितु वे अपार सुन्दर हैं और अपने धाम में अपने अधिकार का भोग करते हैं। यह उन्हीं कृष्ण का रूप है, जो हमारे हड़बड़ाहट भरे संसार के पालन हेतु अपना विस्तार विष्णु रूप में करते हैं।

श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि शब्द *शङ्कितः* ''कुछ संशय रखते हुए'' यह सूचित करता है कि मुचुकुन्द सोच रहा था, ''क्या सचमुच यही भगवान् हैं?'' अगले श्लोकों में वह अपनी बात स्पष्ट रूप से कहता है।

श्रीमुचुकुन्द उवाच
को भवानिह सम्प्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥ २७॥

शब्दार्थ

श्री-मुचुकुन्दः उवाच—श्री मुचुकुन्द ने कहा; कः—कौन हैं; भवान्—आप; इह—यहाँ; सम्प्राप्तः—(मेरे साथ) पधारे हुए; विपिने—जंगल में; गिरि-गह्वरे—पर्वत की गुफा में; पद्भ्याम्—अपने पाँव से; पद्म—कमल के; पलाशाभ्याम्—पंखड़ियों (की तरह); विचरसि—घूम रहे हो; उरु-कण्टके—काँटों से भरे हुए।

श्री मुचुकुन्द ने कहा, ''आप कौन हैं, जो जंगल में इस पर्वत-गुफा में अपने कमल की पंखड़ियों जैसे कोमल पाँवों से कँटीली भूमि पर चलकर आये हैं?''

किं स्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान्वा विभावसुः ।
सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालो परोऽपि वा ॥ २८॥

शब्दार्थ

किम् स्वित्—शायद; तेजस्विनाम्—सारे शक्तिशाली जीवों में; तेजः—आदि रूप; भगवान्—शक्तिशाली प्रभु; वा—अथवा; विभावसुः—अग्नि देवता; सूर्यः—सूर्यदेव; सोमः—चन्द्रदेव; महा-इन्द्रः—स्वर्ग का राजा इन्द्र; व—अथवा; लोक—लोक का; पालः—शासक; अपरः—दूसरा; अपि वा—या फिर।

शायद आप समस्त शक्तिशाली जीवों की शक्ति हैं। या फिर आप शक्तिशाली अग्नि देव या सूर्यदेव, चन्द्रदेव, स्वर्ग के राजा इन्द्र या अन्य किसी लोक के शासन करने वाले देवता तो नहीं हैं?

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ।
यद्बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

मन्ये—मानता हूँ; त्वाम्—तुमको; देव-देवानाम्—देवताओं के प्रमुख के; त्रयाणाम्—तीनों (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव); पुरुष—पुरुषों के; ऋषभम्—सबसे बड़ा; यत्—क्योंकि; बाधसे—भगा देते हो; गुह—गुफा का; ध्वान्तम्—अँधेरा; प्रदीपः—दीपक; प्रभया—अपने प्रकाश से; यथा—जिस तरह।

मेरे विचार से आप तीन प्रमुख देवताओं में भगवान् हैं क्योंकि आप इस गुफा के अँधेरे को उसी तरह भगा रहे हैं जिस तरह दीपक अपने प्रकाश से अँधकार को दूर कर देता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि भगवान् कृष्ण ने अपने तेज से न केवल पर्वत की गुफा का अंधकार दूर किया अपितु मुचुकुन्द के हृदय के अंधकार को भी दूर किया। संस्कृत में कभी कभी हृदय को *गुहा* अर्थात् एक गहरा गुप्त स्थान कहा जाता है।

शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव ।
स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

शुश्रूषताम्—सुनने के इच्छुक लोगों को; अव्यलीकम्—सही सही; अस्माकम्—हमको; नर—मनुष्यों में; पुम्-गव—हे अत्यन्त प्रसिद्ध; स्व—अपना; जन्म—जन्म; कर्म—कार्य; गोत्रम्—वंश परम्परा; वा—अथवा; कथ्यताम्—कहने की कृपा करें; यदि—यदि; रोचते—अच्छा लगे।

हे पुरुषोत्तम यदि आपको ठीक लगे तो आप अपने जन्म, कर्म तथा गोत्र के विषय में हमसे सही सही (स्पष्ट) बतलायें क्योंकि हम सुनने के इच्छुक हैं।

तात्पर्य : जब भगवान् इस संसार में अवतरित होते हैं, तो वे निश्चय ही *नरपुंगव* अर्थात् मानव समाज के सर्वाधिक उत्कृष्ट सदस्य बन जाते हैं। भगवान् वास्तविक रूप में मनुष्य नहीं हैं और मुचुकुन्द के प्रश्नों से इस बात का स्पष्टीकरण हो जायेगा। इसी तरह *शुश्रूषताम्* ''हमें जो सुनने के उत्सुक हैं'' शब्द सूचित करता है कि मुचुकुन्द अपने तथा अन्यों के लाभ के लिए एक उत्तम विधि द्वारा पूछ रहा

है।

वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः ।
मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; तु—दूसरी ओर; पुरुष—पुरुषों में; व्याघ्र—हे बाघ; ऐक्ष्वाकाः—इक्ष्वाकु वंशी; क्षत्र—क्षत्रियों के; बन्धवः—परिवार के सदस्य; मुचुकुन्दः—मुचुकुन्द; इति—इस प्रकार; प्रोक्तः—कहागया; यौवनाश्व—यौवनाश्व (युवनाश्व का पुत्र) का; आत्म-जः—पुत्र; प्रभो—हे प्रभु।

हे पुरुष-व्याघ्र, जहाँ तक हमारी बात है, हम तो पतित क्षत्रियों के वंश से सम्बन्धित हैं और राजा इक्ष्वाकु के वंशज हैं। हे प्रभु, मेरा नाम मुचुकुन्द है और मैं युवनाश्व का पुत्र हूँ।

तात्पर्य : वैदिक संस्कृति में यह सामान्य नियम है कि क्षत्रिय अपना परिचय विनयपूर्वक *क्षत्र-बन्धु* के रूप में देगा—जिसका अर्थ है क्षत्रिय कुल का केवल एक सम्बन्धी या दूसरे शब्दों में पतित क्षत्रिय। प्राचीन वैदिक संस्कृति में अपने परिवार-सम्बन्धों के आधार पर विशिष्ट पद का दावा करना स्वयं में पतितावस्था का सूचक था। क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों को उनके कर्म तथा चरित्र के गुणों के आधार पर पद प्रदान किया जाना होता था। परन्तु जब भारत में जाति प्रथा का पतन हो गया तो लोग बड़े गर्व से अपने को क्षत्रियों या ब्राह्मणों के सम्बन्धी बतलाने लगे यद्यपि भूतकाल में ठोस योग्यताओं के बिना ऐसा दावा पतितावस्था का सूचक था।

चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयापहतेन्द्रियः ।
शयेऽस्मिन्विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

चिर—दीर्घकाल से; प्रजागर—जगे रहने से; श्रान्तः—थका हुआ; निद्रया—नींद से; अपहत—आच्छादित; इन्द्रियः—मेरी इन्द्रियाँ; शये—मैं लेटा रहा हूँ; अस्मिन्—इस; विजने—निर्जन स्थान में; कामम्—इच्छानुसार; केन अपि—किसी के द्वारा; उत्थापितः—जगाया गया; अधुना—अब।

दीर्घकाल तक जागे रहने के कारण मैं थक गया था और नींद से मेरी इन्द्रियाँ वशीभूत थीं। इस तरह मैं तब से इस निर्जन स्थान में सुखपूर्वक सोता रहा हूँ किन्तु अब जाकर किसी ने मुझे जगा दिया है।

सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ।
अनन्तरं भवान्श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशासनः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

सः अपि—यही व्यक्ति; भस्मी-कृतः—राख हुआ; नूनम्—निस्सन्देह; आत्मीयेन—अपने ही; एव—एकमात्र; पाप्मना—पापपूर्ण कर्म से; अनन्तरम्—तुरन्त बाद; भवान्—आप; श्रीमान्—यशस्वी; लक्षितः—देखा गया; अमित्र—शत्रुओं का; शासनः—दण्ड देने वाला।

जिस व्यक्ति ने मुझे जगाया था वह अपने पापों के फल से जल कर राख हो गया। तभी मैंने यशस्वी स्वरूप वाले एवं अपने शत्रुओं को दण्ड देने की शक्ति से सामर्थ्यवान आपको देखा।

तात्पर्य : कालयवन ने अपने को श्रीकृष्ण का तथा यदुवंश का शत्रु घोषित किया था। श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द के माध्यम से उस मूर्ख बर्बर के विरोध को नष्ट कर दिया।

तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ।
हतौजसा महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तेजसा—तेज के कारण; ते—तुम्हारे; अविषह्येण—असह्य; भूरि—अधिक; द्रष्टुम्—देख पाना; न शक्नुमः—हम समर्थ नहीं हैं; हत—घटा हुआ; ओजसा—अपने ओज से; महा-भग—हे परम ऐश्वर्यवान; माननीयः—सम्मान पाने के योग्य; असि—हो; देहिनम्—देहधारी जीवों द्वारा।

आपके असह्य तेज से हमारी शक्ति दबी जाती है और हम आप पर अपनी दृष्टि स्थिर नहीं कर पाते। हे माननीय, आप समस्त देहधारियों द्वारा आदर किये जाने के योग्य हैं।

एवं सम्भाषितो राज्ञा भगवान्भूतभावनः ।
प्रत्याह प्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥ ३५॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सम्भाषितः—कहा गया; राज्ञा—राजा द्वारा; भगवान्—भगवान् ने; भूत—समस्त सृष्टि के; भावनः—उद्गम; प्रत्याह—उत्तर दिया; प्रहसन्—हँसते हुए; वाण्या—शब्दों से; मेघ—बादलों की; नाद—गड़गड़ाहट की तरह; गभीरया—गम्भीर।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा]: राजा द्वारा इस तरह कहे जाने पर समस्त सृष्टि के उद्गम भगवान् मुसकराने लगे और तब उन्होंने बादलों की गर्जना के सदृश गम्भीर वाणी में उसे उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ।
न शक्यन्तेऽनुसङ्ख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥ ३६॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; जन्म—जन्म; कर्म—कार्य; अभिधानानि—तथा नाम; सन्ति—हैं; मे—मेरे; अङ्ग—हे प्रिय; सहस्त्रशः—हजारों; न शक्यन्ते—वे नहीं हो सकते; अनुसङ्ख्यातुम्—गिने जाना; अनन्तत्वात्—अन्त न होने से; मया—मेरे द्वारा; अपि हि—भी।.

भगवान् ने कहा : हे मित्र, मैं हजारों जन्म ले चुका हूँ; हजारों जीवन जी चुका हूँ; और हजारों नाम धारण कर चुका हूँ। वस्तुतः मेरे जन्म, कर्म तथा नाम अनन्त हैं, यहाँ तक कि मैं भी उनकी गणना नहीं कर सकता।

क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ।
गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; रजांसि—धूल के कण; विममे—गिन सकता है; पार्थिवानि—पृथ्वी पर; उरु-जन्मभिः—अनेक जन्मों में; गुण—गुण; कर्म—कार्यकलाप; अभिधानानि—तथा नाम; न—नहीं; मे—मेरे; जन्मानि—अनेक जन्म; कर्हिचित्—कभी।.

यह सम्भव है कि कोई व्यक्ति पृथ्वी पर धूल-कणों की गणना कई जन्मों में कर ले किन्तु मेरे गुणों, कर्मों, नामों तथा जन्मों की गणना कोई भी कभी पूरी नहीं कर सकता।

कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ।
अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥ ३८॥

शब्दार्थ

काल—समय का; त्रय—तीन अवस्थाओं (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) में; उपपन्नानि—घटित होना; जन्म—जन्म; कर्माणि—तथा कर्म; मे—मेरे; नृप—हे राजा (मुचुकुन्द); अनुक्रमन्तः—गिनती करते हुए; न—नहीं; एव—तनिक भी; अन्तम्—अन्त; गच्छन्ति—पहुँचते हैं; परम—महानतम; ऋषयः—ऋषिगण।.

हे राजन्, बड़े से बड़े ऋषि मेरे उन जन्मों तथा कर्मों की गणना करते रहते हैं, जो काल की तीनों अवस्थाओं में घटित होते हैं किन्तु वे कभी उसका अन्त नहीं पाते।

तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृनुष्व गदतो मम ।
विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराहं धर्मगुप्तये ।
भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥ ३९॥
अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः ।
वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥ ४०॥

शब्दार्थ

तथा अपि—फिर भी; अद्यतनानि—वर्तमान; अङ्ग—हे मित्र; शृणुष्व—सुनो; गदतः—मेरे द्वारा कहा गया; मम—मुझसे; विज्ञापितः—प्रार्थना किया जाकर; विरिञ्चेन—ब्रह्मा द्वारा; पुरा—भूतकाल में; अहम्—मैं; धर्म—धर्म की; गुप्तये—रक्षा करने के लिए; भूमेः—पृथ्वी के लिए; भारायमाणानाम्—भार स्वरूप; असुराणाम्—असुरों के; क्षयाय—विनाश के लिए; च—

तथा; अवतीर्णः—अवतरित; यदु—यदु के; कुले—वंश में; गृहे—घर में; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव के; वदन्ति—लोग कहकर पुकारते हैं; वासुदेवः इति—वासुदेव नाम से; वसुदेव-सुतम्—वसुदेव के पुत्र को; हि—निस्सन्देह; माम्—मुझे।

तो भी हे मित्र, मैं अपने इस (वर्तमान) जन्म, नाम तथा कर्म के विषय में तुम्हें बतलाऊँगा। कृपया सुनो। कुछ काल पूर्व ब्रह्मा ने मुझसे धर्म की रक्षा करने तथा पृथ्वी के भारस्वरूप असुरों का संहार करने की प्रार्थना की थी। इस तरह मैंने यदुवंश में आनकदुन्दुभि के घर अवतार लिया। चूँकि मैं वसुदेव का पुत्र हूँ इसलिए लोग मुझे वासुदेव कहते हैं।

कालनेमिर्हतः कंसः प्रलम्बाद्याश्च सद्दि्वषः ।
अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कालनेमिः—कालनेमि असुर; हतः—मारा गया; कंसः—कंस; प्रलम्ब—प्रलम्ब; आद्याः—इत्यादि; च—भी; सत्—पुण्यात्मा लोगों का; द्विषः—ईर्ष्यालु; अयम्—यह; च—तथा; यवनः—यवन; दग्धः—जला हुआ; राजन्—हे राजा; ते—तुम्हारी; तिग्म—तेज, तीक्ष्ण; चक्षुषा—चितवन से।

मैंने कालनेमि का वध किया है, जो कंस रूप में फिर से जन्मा था। साथ ही मैंने प्रलम्ब तथा पुण्यात्मा लोगों के अन्य शत्रुओं का भी संहार किया है। और अब हे राजन्, यह बर्बर तुम्हारी तीक्ष्ण चितवन से जल कर भस्म हो गया है।

सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ।
प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाहं भक्तवत्सलः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—वही पुरुष; अहम्—मैं; तव—तुम्हारे; अनुग्रह—अनुग्रह; अर्थम्—के लिए; गुहाम्—गुफा में; एताम्—इस; उपागतः—आया हुआ; प्रार्थितः—के लिए प्रार्थना किया गया; प्रचुरम्—अत्यधिक; पूर्वम्—पहले; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अहम्—मैं; भक्त—अपने भक्तों का; वत्सलः—स्नेही।

चूँकि भूतकाल में तुमने मुझसे बारम्बार प्रार्थना की थी इसलिए मैं स्वयं तुम पर अनुग्रह दर्शाने के लिए इस गुफा में आया हूँ, क्योंकि मैं अपने भक्तों के प्रति वत्सल रहता हूँ।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि मुचुकुन्द भगवान् का भक्त था। उसने भगवान् का सान्निध्य पाने के लिए प्रार्थना की थी और अब श्रीकृष्ण ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया था।

वरान्वृणीष्व राजर्षे सर्वान्कामान्ददामि ते ।
मां प्रसन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

वरान्—वर; वृणीष्व—चुन लो; राज-ऋषे—हे राजर्षि; सर्वान्—समस्त; कामान्—इच्छित वस्तुएँ; ददामि—देता हूँ; ते—तुमको; माम्—मुझको; प्रसन्नः—प्रसन्न करके; जनः—व्यक्ति; कश्चित्—कोई; न भूयः—फिर नहीं; अर्हति—आवश्यकता होती है; शोचितुम्—शोक करने की।

हे राजर्षि, अब मुझसे कुछ वर ले लो। मैं तुम्हारी समस्त इच्छाएँ पूरी कर दूँगा। जो मुझे प्रसन्न कर लेता है, उसे फिर कभी शोक नहीं करना पड़ता।

तात्पर्य : आचार्यों का कहना है कि हम तभी शोक करते हैं जब हम अपूर्ण अनुभव करते हैं, जब हमारी कोई वस्तु खो जाती है या जब हम अभीष्ट प्राप्त नहीं कर पाते। जिसने कृष्ण को प्रसन्न कर लिया है और इस तरह से उनकी कृपा प्राप्त कर ली है, उसे इस तरह कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। भगवान् कृष्ण समस्त आनन्द के आगार हैं और उन्हें इस दिव्य आनन्द को समस्त जीवों में बाँटने में सुख मिलता है। बस, हमें भगवान् के साथ सहयोग करने की आवश्यकता है।

श्रीशुक उवाच
इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः ।
ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तः—कहे जाने पर; तम्—उनसे; प्रणम्य—प्रणाम करके; आह—कहा; मुचुकुन्दः—मुचुकुन्द ने; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक; अन्वितः—पूरित; ज्ञात्वा—जानकर; नारायणम् देवम्—भगवान् नारायण के रूप में; गर्ग-वाक्यम्—गर्ग मुनि के वचन; अनुस्मरन्—स्मरण करते हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यह सुनकर मुचुकुन्द ने भगवान् को प्रणाम किया। गर्ग मुनि के वचनों का स्मरण करते हुए उसने कृष्ण को भगवान् नारायण रूप में हर्षपूर्वक पहचान लिया। फिर राजा ने उनसे इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : यद्यपि यहाँ पर भगवान् चतुर्भुजी नारायण के रूप में प्रकट होते हैं किन्तु हम यह कह सकते हैं कि मुचुकुन्द श्रीकृष्ण को सम्बोधित कर रहा था। यह सब *कृष्णलीला* के प्रसंग में घटित हो रहा है। वैष्णवजन भलीभाँति अवगत हैं कि विष्णु या नारायण के चतुर्भुजी रूप श्रीकृष्ण के अंश होते हैं। इस तरह भगवान् कृष्ण की लीलाओं के अन्तर्गत *विष्णुलीला* भी प्रकट हो सकती है। भगवान् के ऐसे हैं गुण तथा कर्म। जो कार्य हमारे लिए असामान्य तथा असम्भव तक हो सकते हैं, वे भगवान् के लिए सामान्य और परिश्रम-रहित लीला विलास हैं।

श्रील श्रीधर स्वामी सूचित करते हैं कि मुचुकुन्द प्राचीन गर्ग मुनि की इस भविष्यवाणी से अवगत था कि भगवान् अट्ठाइसवें युग में अवतरित होंगे। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार गर्ग मुनि ने मुचुकुन्द

को यह भी बतलाया था कि तुम भगवान् का दर्शन करोगे। अब यही सब घटित हो रहा था।

श्रीमुचुकुन्द उवाच
विमोहितोऽयं जन ईश मायया
त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते
गृहेषु योषित्पुरुषश्च वञ्चितः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

श्री-मुचुकुन्दः उवाच—श्री मुचुकुन्द ने कहा; विमोहितः—मोहग्रस्त; अयम्—यह; जनः—व्यक्ति; ईश—हे प्रभु; मायया—माया द्वारा; त्वदीयया—आपकी; त्वाम्—आपको; न भजति—नहीं पूजता; अनर्थ-दृक्—असली लाभ न देखते हुए; सुखाय—सुख के लिए; दुःख—दुख; प्रभवेषु—उत्पन्न करने वाली वस्तुओं में; सज्जते—फँस जाता है; गृहेषु—पारिवारिक मामलों में; योषित्—स्त्री; पुरुषः—पुरुष; च—तथा; वञ्चितः—ठगे गये।

श्री मुचुकुन्द ने कहा : हे प्रभु, इस जगत के सभी स्त्री-पुरुष आपकी मायाशक्ति के द्वारा मोहग्रस्त हैं। वे अपने असली लाभ से अनजान रहते हुए आपको न पूजकर अपने को कष्टों के मूल स्त्रोत अर्थात् पारिवारिक मामलों में फँसाकर सुख की तलाश करते हैं।

तात्पर्य : मुचुकुन्द तुरन्त स्पष्ट कर देते हैं कि वे भगवान् से कोई भौतिक वर नहीं माँगने जा रहे। वे उन लोगों से आध्यात्मिक स्तर पर बहुत आगे समुन्नत थे, जो सभी तरह के भौतिक लाभों के लिए धर्म का दुरुपयोग करने का प्रयास करते हैं। *अर्थ* शब्द का मतलब है मूल्य और इस शब्द का विलोम शब्द *अनर्थ* है, जिसका अर्थ है ''मूल्यरहित या निरर्थक।'' अतः *अनर्थ-दृक्* उन लोगों का सूचक है जिनकी दृष्टि व्यर्थ की वस्तुओं में लगी रहती है और जिन्होंने समझा ही नहीं कि वास्तव में *अर्थ* क्या है। हर चमकने वाली वस्तु सोना नहीं होती। यहाँ पर मुचुकुन्द बलपूर्वक कहता है कि हमें शारीरिक सम्बन्ध रूपी मूर्ख के सोने में अपने को उलझाकर अपने आध्यात्मिक अवसरों को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। हम तो भगवान् से प्रेम करने हेतु निमित्त हैं।

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं
कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ।
पादारविन्दं न भजत्यसन्मति-
र्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

लब्ध्वा—प्राप्त करके; जनः—व्यक्ति; दुर्लभम्—दुर्लभ; अत्र—इस संसार में; मानुषम्—मनुष्य जीवन; कथञ्चित्—किसी न किसी तरह से; अव्यङ्गम्—बिना प्रयास के; अयत्नतः—स्वतः प्राप्त; अनघ—हे निष्पाप; पाद—आपके पाँव; अरविन्दम्—

कमल सदृश; न भजति—नहीं पूजा करता; असत्—अशुद्ध; मतिः—मानसिकता; गृह—घर के; अन्ध—अन्धा; कूपे—कुएँ में; पतितः—गिरा हुआ; यथा—जिस तरह; पशुः—कोई पशु।

उस मनुष्य का मन अशुद्ध होता है, जो अत्यन्त दुर्लभ एवं अत्यन्त विकसित मनुष्य-जीवन के येन-केन-प्रकारेण स्वतः प्राप्त होने पर भी आपके चरणकमलों की पूजा नहीं करता। ऐसा व्यक्ति अंधे कुएँ में गिरे हुए पशु के समान, भौतिक घरबार रूपी अंधकार में गिर जाता है।

तात्पर्य : हमारा असली घर तो भगवद्धाम है। अपने भौतिक घर में रहते रहने के हमारे दृढ़ संकल्प के बावजूद काल हमें भौतिक कार्यकलाप के मंच से अभद्रता से निकाल बाहर कर देता है। घर पर रहना बुरा नहीं है, न ही अपने प्रियजनों के साथ अनुराग बढ़ाना ही बुरा है। किन्तु हमें यह समझना चाहिए कि हमारा असली घर शाश्वत है और वह वैकुण्ठ में है।

अयत्नतः शब्द इंगित करता है कि हमें मनुष्य जीवन स्वतः प्राप्त हुआ है। हमने अपने मनुष्य शरीर को बनाया नहीं इसलिए मूर्खतावश यह दावा नहीं करना चाहिए कि ''यह शरीर मेरा है।'' मनुष्य जीवन तो ईश्वरीय उपहार है और इसका उपयोग ईश-भावनामृत की सिद्धि प्राप्त करने के लिए किया जाना चाहिए। जो इसे नहीं समझता वह *असन्-मति* है अर्थात् मन्द संसारी बुद्धि वाला है।

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो
राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ।
मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभू-
ष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥ ४७॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; एषः—यह; कालः—समय; अजित—हे अजेय; निष्फलः—व्यर्थ; गतः—अब व्यतीत हुआ; राज्य—राज्य; श्रिया—तथा ऐश्वर्य से; उन्नद्ध—बनाया गया; मदस्य—नशा; भूपतेः—पृथ्वी के राजा का; मर्त्य—मर्त्य शरीर; आत्म—आत्मा के रूप में; बुद्धेः—बुद्धि का; सुत—सन्तान; दार—पत्नियाँ; कोश—खजाना; भूषु—तथा भूमि में; आसज्जमानस्य—आसक्त होकर; दुरन्त—अन्तहीन; चिन्तया—चिन्ता से।

हे अजित, मैंने पृथ्वी के राजा के रूप में अपने राज्य तथा वैभव के मद में अधिकाधिक उन्मत्त होकर सारा समय गँवा दिया है। मर्त्य शरीर को आत्मा मानते हुए तथा संतानों, पत्नियों, खजाना तथा भूमि में आसक्त होकर मैंने अनन्त क्लेश भोगा है।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में मूल्यवान मनुष्य-जीवन को संसारी कार्यों में व्यर्थ ही गँवाने वालों की निन्दा करने के बाद मुचुकुन्द अब यह स्वीकार करता है कि वह स्वयं इसी श्रेणी में आता है। वह भगवान् की संगति का बुद्धिमत्ता से लाभ उठाना चाहता है और सदा सदा के लिए शुद्ध भक्त बन जाना

चाहता है।

कलेवरेऽस्मिन्घटकुड्यसन्निभे
निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ।
वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपै-
र्गां पर्यटंस्त्वागणयन्सुदुर्मदः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

कलेवरे—शरीर में; अस्मिन्—इस; घट—घड़ा; कुड्य—या दीवाल; सन्निभे—के सदृश; निरूढ—बढ़ा-चढ़ाकर वर्णित; मानः—जिसकी झूठी पहचान; नर-देवः—मनुष्यों में देवता (राजा); इति—इस प्रकार (अपने बारे में समझकर); अहम्—मैं; वृतः—घिरा हुआ; रथ—रथों; इभ—हाथियों; अश्व—घोड़ों; पदाति—पैदल सैनिकों; अनीकपैः—तथा सेनापतियों से; गाम्—पृथ्वी की; पर्यटन्—यात्रा करते हुए; त्वा—तुम; अगणयन्—ठीक से न मानते हुए; सु-दुर्मदः—गर्व से प्रवंचित।

अत्यन्त गर्वित होकर मैंने अपने को शरीर मान लिया था, जो घड़े या दीवाल जैसी एक भौतिक वस्तु है। अपने को मनुष्यों में देवता समझ कर मैंने अपने सारथियों, हाथियों, अश्वारोहियों, पैदल सैनिकों तथा सेनापतियों से घिरकर और अपने प्रवंचित गर्व के कारण आपकी अवमानना करते हुए पृथ्वी भर में विचरण किया।

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया
प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे
क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

प्रमत्तम्—पूर्णतया ठगा हुआ; उच्चैः—विस्तृत; इति-कृत्य—करणीय; चिन्तया—विचार से; प्रवृद्ध—बढ़ा हुआ; लोभम्—लालच; विषयेषु—इन्द्रिय विषयों के लिए; लालसम्—लालसा; त्वम्—आप; अप्रमत्तः—जो मोहग्रस्त नहीं है; सहसा—एकाएक; अभिपद्यसे—मुठभेड़ होती है; क्षुत्—प्यास से; लेलिहानः—अपने विषैले दाँतों को चाटता हुआ; अहिः—सर्प; इव—सदृश; आखुम्—चूहे को; अन्तकः—मृत्यु।

करणीय के विचारों में लीन, अत्यन्त लोभी तथा इन्द्रिय-भोग से प्रसन्न रहने वाले मनुष्य का सदा सतर्क रहने वाले आपसे अचानक सामना होता है। जैसे भूखा साँप चूहे के आगे अपने विषैले दाँतों को चाटता है उसी तरह आप उसके समक्ष मृत्यु के रूप में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : हमें यहाँ पर *प्रमत्तम्* तथा *अप्रमत्तः* शब्दों के अन्तर पर ध्यान देना होगा। जो लोग भौतिक जगत का शोषण करना चाहते हैं, वे *प्रमत्त* अर्थात् ''ठगे हुए, मोहग्रस्त, इच्छा से मदान्ध।'' किन्तु भगवान् *अप्रमत्त*-हैं ''सतर्क, गम्भीर तथा मोह रहित।'' भले ही अपनी प्रमत्तता में हम ईश्वर या उनके नियमों को न मानें किन्तु ईश्वर गम्भीर हैं और हमें अपने कर्मों के गुणों के अनुसार पुरस्कृत या

दण्डित करने से नहीं चूकेंगे।

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्
मतंगजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ।
स एव कालेन दुरत्ययेन ते
कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

पुरा—इससे पहले; रथैः—रथों पर; हेम—सोने से; परिष्कृतैः—सजाये; चरन्—आरूढ़ होकर; मतम्—भयानक; गजैः—हाथियों पर; वा—अथवा; नर-देव—राजा; संज्ञितः—नामक; सः—वह; एव—वही; कालेन—काल के द्वारा; दुरत्ययेन—न बच पाने वाले; ते—तुम्हारा; कलेवरः—शरीर; विट्—मल; कृमि—कीड़े-मकोड़े; भस्म—राख; संज्ञितः—नामक।

जो शरीर पहले भयानक हाथियों या सोने से सजाये हुए रथों पर सवार होता है और 'राजा' के नाम से जाना जाता है, वही बाद में आपकी अजेय काल-शक्ति से मल, कृमि या भस्म कहलाता है।

तात्पर्य : संयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य विकसित राष्ट्रों में मृत शरीर स्वच्छ ढंग से प्रसाधनों का लेप करके ठिकाने लगाये जाते हैं, किन्तु संसार के अनेक भागों में वृद्ध, रुग्ण तथा दुर्घटनाग्रस्त लोग एकान्त में या उपेक्षित स्थानों में मर जाते हैं, जहाँ कुत्ते तथा सियार उनके शरीरों को खाकर मल में परिणत कर देते हैं। यदि कोई इतना भाग्यशाली होता है कि उसके शरीर को भूमि में दफनाया जाता है, तो छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े उस शरीर को खा जाते हैं। इसी तरह अनेक पार्थिव शव जलाकर भस्मीभूत कर दिये जाते हैं। हर तरह से मृत्यु निश्चित है और अन्ततः शरीर का भाग्य कभी यशस्वी नहीं है। यही मुचुकुन्द के कथन का वास्तविक तात्पर्य है—अर्थात् जो शरीर अभी राजा, राजकुमार, रूपमती रानी, उच्च-मध्य वर्ग इत्यादि कहलाता है, वह अन्ततोगत्वा मल, कृमि तथा राख कहलाता है।

श्रील श्रीधर स्वामी ने निम्नलिखित वैदिक वाक्य उद्धृत किया है—

योनेः सहस्राणि बहूनि गत्वा
दुःखेन लब्ध्वापि च मानुषत्वम्।
सुखावहं ये न भजन्ति विष्णुं
ते वै मनुष्यात्मनि शत्रुभूताः ॥

"हजारों योनियों से गुजरते हुए तथा अत्यधिक संघर्ष करते हुए बद्धजीव अन्त में मनुष्य रूप प्राप्त

करते हैं। अत: वे मनुष्य जो अब भी उन विष्णु की पूजा नहीं करते जो उन्हें असली सुख प्रदान करने वाले हैं, वे निश्चित रूप से अपने आपके तथा मानवता के शत्रु बने हुए हैं।''

निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो
वरासनस्थ: समराजवन्दित: ।
गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां
क्रीडामृग: पूरुष ईश नीयते ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

निर्जित्य—जीत कर; दिक्—दिशाओं के; चक्रम्—पूरे चक्कर के; अभूत—न रहने पर; विग्रह:—लड़ाई, संघर्ष; वर-आसन—उत्तम सिंहासन पर; स्थ:—आसीन; सम—समान; राज—राजाओं से; वन्दित:—प्रशंसित; गृहेषु—घरों में; मैथुन्य—संभोग; सुखेषु—सुख में; योषिताम्—स्त्रियों के; क्रीडा-मृग:—पालतू पशु; पुरुष:—पुरुष; ईश—हे प्रभु; नीयते—ले जाया जाता है।

समस्त दिग-दिगान्तरों को जीत कर और इस तरह लड़ाई से मुक्त होकर मनुष्य भव्य राज सिंहासन पर आसीन होता है और अपने उन नायको से प्रशंसित होता है, जो किसी समय उसके बराबर थे। किन्तु जब वह स्त्रियों के कक्ष में प्रवेश करता है जहाँ संभोग-सुख पाया जाता है, तो हे प्रभु, वह पालतू पशु की तरह हाँका जाता है।

करोति कर्माणि तप:सुनिष्ठितो
निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् ।
पुनश्च भूयासमहं स्वराडिति
प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

करोति—करता है; कर्माणि—कर्तव्य; तप:—तपस्या; सु-निष्ठित:—अत्यन्त स्थिर; निवृत्त—बचाते हुए; भोग:—इन्द्रिय भोग; तत्—उस (पद) से; अपेक्षया—तुलना में; अददत्—मानते हुए; पुन:—आगे; च—तथा; भूयासम्—अधिक बड़ा; अहम्—मैं; स्व-राट्—सम्राट, एकछत्र शासक; इति—इस प्रकार सोचते हुए; प्रवृद्ध—बढ़ी हुई; तर्ष:—वेग, तृष्णा; न—नहीं; सुखाय—सुख; कल्पते—प्राप्त कर सकता है।

जो राजा पहले से प्राप्त शक्ति से भी और अधिक शक्ति (अधिकार) की कामना करता है, वह तपस्या करके तथा इन्द्रिय-भोग का परित्याग करके कठोरता से अपने कर्तव्य पूरा करता है। किन्तु जिसके वेग (तृष्णाएँ) यह सोचते हुए कि ''मैं स्वतंत्र तथा सर्वोच्च हूँ,'' इतने प्रबल हैं, वह कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकता।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-

जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

भव—अस्तित्व का; अपवर्गः—समाप्ति; भ्रमतः—घूमने वाला; यदा—जब; भवेत्—होता है; जनस्य—मनुष्य के लिए; तर्हि—उस समय; अच्युत—हे अच्युत; सत्—साधु-भक्तों की; समागमः—संगति; सत्-सङ्गमः—साधु-संगति; यर्हि—जब; तदा—तब; एव—केवल; सत्—सन्तों का; गतौ—लक्ष्य है, जो; पर—श्रेष्ठ का (जगत के कारण); अवर—तथा निकृष्ट (कार्य); ईशे—भगवान् में; त्वयि—तुम; जायते—उत्पन्न होती है; मतिः—भक्ति।

हे अच्युत, जब भ्रमणशील आत्मा (जीव) का भौतिक जीवन समाप्त हो जाता है, तो वह आपके भक्तों की संगति प्राप्त कर सकता है। और जब वह उनकी संगति करता है, तो भक्तों के लक्ष्य और समस्त कारणों तथा उनके प्रभावों के स्वामी आपके प्रति उसमें भक्ति उत्पन्न होती है।

तात्पर्य : आचार्य जीव गोस्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती इस बात पर एकमत हैं कि यद्यपि यहाँ कहा गया है कि जब भौतिक जीवन का अन्त होता है, तो मनुष्य को भक्तों की संगति प्राप्त होती है किन्तु वस्तुतः भगवद्भक्तों की संगति से ही मनुष्य भवसागर को लाँघ सकता है। इस प्रतीत होने वाले विपर्यय के लिए श्रील जीव गोस्वामी *काव्यप्रकाश* का (१०.१५३) उद्धरण देते हैं—*कार्यकारणयोश्च पौर्वापर्यविपर्ययो विज्ञेयातिशयोक्तिः स्यात् सा*—वह कथन जिसमें कार्य तथा कारण का तार्किक क्रम उलट जाता है उसे अतिशयोक्ति कहते हैं। इस कथन पर श्रील जीव गोस्वामी की टीका है—*कारणस्य शीघ्रकारितां वक्तुं कार्यस्य पूर्वमुक्तौ*—किसी कारण की त्वरित क्रिया को व्यक्त करने के लिए कारण के पूर्व फल पर बल दिया जा सकता है।

इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि भगवद्भक्तों की कृपापूर्ण संगति से कृष्णभावनाभावित होने का हमारा संकल्प संभव बनता है। और आचार्यगण श्रील जीव गोस्वामी से सहमत हैं कि इस श्लोक में *अतिशयोक्ति* है।

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो
राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया ।
यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया
वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

मन्ये—मैं सोचता हूँ; मम—मुझ पर; अनुग्रहः—दया; ईश—हे प्रभु; ते—आपके द्वारा; कृतः—की गई; राज्य—साम्राज्य; अनुबन्ध—आसक्ति का; अपगमः—विलगाव; यदृच्छया—जहाँ की तहाँ; यः—जो; प्रार्थ्यते—के लिए प्रार्थना की जाती है;

साधुभिः—सन्तों द्वारा; एक-चर्यया—एकान्त में; वनम्—जंगल; विविक्षद्भिः—प्रवेश करने के इच्छुक; अखण्ड—असीम; भूमि—भूमि के; पैः—शासकों द्वारा।

हे प्रभु, मैं सोचता हूँ कि आपने मुझ पर कृपा की है क्योंकि आपने साम्राज्य के प्रति मेरी आसक्ति अपने आप समाप्त हो गई है। ऐसी मुक्ति (स्वतंत्रता) के लिए विशाल साम्राज्य के साधु शासकों द्वारा प्रार्थना की जाती है, जो एकान्त जीवन बिताने के लिए जंगल में जाना चाहते हैं।

न कामयेऽन्यं तव पादसेवना-
दकिञ्चनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ।
आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे
वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

न कामये—मैं इच्छा नहीं करता; अन्यम्—दूसरी; तव—तुम्हारे; पाद—चरणों के; सेवनात्—सेवा के अतिरिक्त; अकिञ्चन—कुछ न चाहने वालों के द्वारा; प्रार्थ्य-तमात्—जो प्रार्थनीय हो; वरम्—वर; विभो—हे सर्वशक्तिमान; आराध्य—पूज्य; कः—कौन; त्वाम्—तुमको; हि—निस्सन्देह; अपवर्ग—मोक्ष का; दम्—प्रदाता; हरे—हे हरि; वृणीत—चुनेगा; आर्यः—श्रेष्ठ पुरुष; वरम्—वर; आत्म—अपना; बन्धनम्—बन्धन (का कारण)।

हे सर्वशक्तिमान, मैं आपके चरणकमलों की सेवा के अतिरिक्त और किसी वर की कामना नहीं करता क्योंकि यह वर उन लोगों के द्वारा उत्सुकतापूर्वक चाहा जाता है, जो भौतिक कामनाओं से मुक्त हैं। हे हरि! ऐसा कौन प्रबुद्ध व्यक्ति होगा जो मुक्तिदाता अर्थात् आपकी पूजा करते हुए ऐसा वर चुनेगा जो उसका ही बन्धन बने?

तात्पर्य : भगवान् ने मुचुकुन्द को मुँहमाँगा वर लेने को कहा किन्तु वे केवल भगवान् की कामना कर रहे थे। यह शुद्ध कृष्णभावनामृत है।

तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो
रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः ।
निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं
त्वां ज्ञाप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; विसृज्य—त्यागकर; आशिषः—इच्छित वस्तुएँ; ईश—हे प्रभु; सर्वतः—नितान्त; रजः—रजो; तमः—तमो; सत्त्व—तथा सतो; गुण—भौतिक गुण; अनु-बन्धनाः—फँसा हुआ; निरञ्जनम्—भौतिक उपाधियों से मुक्त; निर्गुणम्—गुणों से परे; अद्वयम्—अद्वय; परम्—परम; त्वाम्—तुम्हारे पास; ज्ञाप्ति-मात्रम्—शुद्ध ज्ञान; पुरुषम्—आदि-पुरुष को; व्रजामि—पास आ रहा हूँ; अहम्-इ.

इसलिए हे प्रभु, उन समस्त भौतिक इच्छाओं को त्यागकर जो रजो, तमो तथा सतो गुणों से

बद्ध हैं, मैं शरण लेने के लिए आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से प्रार्थना कर रहा हूँ। आप संसारी उपाधियों से प्रच्छन्न नहीं हैं, प्रत्युत आप शुद्ध ज्ञान से पूर्ण तथा भौतिक गुणों से परे परम सत्य हैं।

तात्पर्य : यहाँ *निर्गुणम्* शब्द सूचित करता है कि भगवान् का अस्तित्व प्रकृति के गुणों से परे है। कोई यह तर्क कर सकता है कि कृष्ण का शरीर तो भौतिक प्रकृति से बना है किन्तु यहाँ पर *अद्वयम्* शब्द इस तर्क का खंडन करता है। कृष्ण के अस्तित्व में कोई द्वैत नहीं है। उनका नित्य आध्यात्मिक शरीर ही कृष्ण है और कृष्ण ईश्वर हैं।

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापै-
रवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित् ।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्म-
नभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

चिरम्—दीर्घकाल से; इह—इस संसार में; वृजिन—उत्पातों द्वारा; आर्तः—दुखी; तप्यमानः—सताये; अनुतापैः—पश्चाताप से; अवितृष—अतृप्त; षट्—छः; अमित्रः—शत्रु (पाँच इन्द्रियाँ तथा मन); अलब्ध—न प्राप्त करते हुए; शान्तिः—शान्ति; कथञ्चित्—किसी तरह से; शरण—शरण का; द—हे देने वाले; समुपेतः—आने वाले; त्वत्—तुम्हारे; पद-अब्जम्—चरणकमल; पर-आत्मन्—हे परमात्मा; अभयम्—निर्भीक; ऋतम्—सत्य; अशोकम्—शोकरहित; पाहि—रक्षा करो; मा—मेरी; आपन्नम्—संकट से घिरा; ईश—हे प्रभु।

इतने दीर्घकाल से मैं इस जगत में कष्टों से पीड़ित होता रहा हूँ और शोक से जलता रहा हूँ। मेरे छह शत्रु कभी भी तृप्त नहीं होते और मुझे शान्ति नहीं मिल पाती। अतः हे शरणदाता, हे परमात्मा! मेरी रक्षा करें। हे प्रभु, सौभाग्य से इतने संकट के बीच मैं आपके चरणकमलों तक पहुँचा हूँ, जो सत्य रूप हैं और जो निर्भय तथा शोक-रहित बनाने वाले हैं।

श्रीभगवानुवाच
सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ।
वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; सार्वभौम—हे सम्राट; महा-राज—महान् राजा; मतिः—मन; ते—तुम्हारा; विमल—निष्कलंक; ऊर्जिता—शक्तिशाली; वरैः—वरों से; प्रलोभितस्य—प्रलोभन में फँसे, तुम्हारा; अपि—यद्यपि; न—नहीं; कामैः—भौतिक इच्छाओं द्वारा; विहता—विनष्ट; यतः—चूँकि।

भगवान् ने कहा : हे सम्राट, महान् राजा, तुम्हारा मन शुद्ध तथा सामर्थ्यवान है। यद्यपि मैंने

वरों के द्वारा तुम्हें प्रलोभित करना चाहा किन्तु तुम्हारा मन भौतिक इच्छाओं के वशीभूत नहीं हुआ।

प्रलोभितो वरैर्यत्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ।
न धीरेकान्तभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

प्रलोभितः—प्रलोभन में आये; वरैः—वरों से; यत्—जो तथ्य; त्वम्—तुम; अप्रमादाय—मोह से मुक्त होने के लिए; विद्धि—जानो; तत्—वह; न—नहीं; धीः—बुद्धि; एकान्त—एकमात्र; भक्तानाम्—भक्तों के; आशीर्भिः—आशीर्वादों से; भिद्यते—विपथ होती है, भटकती है; क्वचित्—कभी।

यह जान लो कि मैं यह सिद्ध करने के लिए तुम्हें वरों से प्रलोभन दे रहा था कि तुम धोखा नहीं खा सकते। मेरे शुद्ध भक्त की बुद्धि कभी भी भौतिक आशीर्वादों से विपथ नहीं होती।

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ।
अक्षीणवासनं राजन्दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

युञ्जानानाम्—लगे रहने वाले का; अभक्तानाम्—अभक्तों का; प्राणायाम—प्राणायाम से; आदिभिः—इत्यादि से; मनः—मन; अक्षीण—निर्मूल नहीं हुई; वासनम्—वासना के अन्तिम अवशेष; राजन्—हे राजन् (मुचुकुन्द); दृश्यते—देखी जाती हैं; पुनः—फिर; उत्थितम्—जगती हुई (इन्द्रिय तृप्ति के विचारों के प्रति)।

ऐसे अभक्तगण जो प्राणायाम जैसे अभ्यासों में लगते हैं उनके मन भौतिक इच्छाओं से कभी विमल नहीं होते। इस तरह हे राजन्, उनके मन में भौतिक इच्छाएँ पुनः उठती हुई देखी गई हैं।

विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ।
अस्त्वेवं नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

विचरस्व—भ्रमण करो; महीम्—इस पृथ्वी पर; कामम्—इच्छानुसार; मयि—मुझमें; आवेशित—स्थिर; मानसः—तुम्हारा मन; अस्तु—होए; एवम्—इस प्रकार; नित्यदा—सदैव; तुभ्यम्—तुम्हारे लिए; भक्तिः—भक्ति; मयि—मुझमें; अनपायिनी—अविचल।

अपना मन मुझमें स्थिर करके तुम इच्छानुसार इस पृथ्वी पर विचरण करो। मुझमें तुम्हारी ऐसी अविचल भक्ति सदैव बनी रहे।

क्षात्रधर्मस्थितो जन्तून्व्यवधीर्मृगयादिभिः ।
समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

क्षात्र—क्षत्रियों के; धर्म—धर्म में; स्थित:—स्थित; जन्तून्—जीवों को; न्यवधी:—तुमने मारा; मृगया—शिकार के समय; आदिभि:—तथा अन्य कार्यों से; समाहित:—पूर्णतया केन्द्रित; तत्—उस; तपसा—तपस्या से; जहि—समूल उखाड़ फेंको; अघम्—पापपूर्ण फल को; मत्—मुझमें; उपाश्रित:—शरण लिये हुए।

चूँकि तुमने क्षत्रिय के सिद्धान्तों का पालन किया है, अत: शिकार करते तथा अन्य कार्य सम्पन्न करते समय तुमने जीवों का वध किया है। तुम्हें चाहिए कि सावधानी के साथ तपस्या करते हुए तथा मेरे शरणागत रहते हुए इस तरह से किए हुए पापों को मिटा डालो।

जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तम: ।
भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

जन्मनि—जन्म में; अनन्तरे—इसके तुरन्त बाद; राजन्—हे राजन्; सर्व—सभी; भूत—जीवों का; सुहृत्-तम:—सर्वश्रेष्ठ शुभचिन्तक; भूत्वा—बनकर; द्विज-वर:—श्रेष्ठ ब्राह्मण; त्वम्—तुम; वै—निस्सन्देह; मम्—मेरे पास; उपैष्यसि—आओगे; केवलम्—एकमात्र।

हे राजन्, तुम अगले जीवन में श्रेष्ठ ब्राह्मण, समस्त जीवों के सर्वोत्तम शुभचिन्तक बनोगे और अवश्य ही मेरे पास आओगे।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (५.२९) में श्रीकृष्ण कहते हैं *सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति* मुझे सभी जीवों का शुभचिन्तक मित्र समझकर मनुष्य शान्ति प्राप्त करता है। भगवान् कृष्ण तथा उनके भक्त पतितात्माओं को मोह-सागर से उबारने के लिए साथ-साथ मिलकर काम करते हैं। यही असली तात्पर्य है कृष्णभावनामृत आन्दोलन का।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''मुचुकुन्द का उद्धार'' नामक इक्यावनवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।